शरीरविज्ञानविमर्श

डॉ0 जयमंगल पाण्डेय*

मानव–सत्ता के 3 शरीर हैं– (1) कारण शरीर (2) सूक्ष्म शरीर तथा (3) स्थूल शरीर। 'कारण शरीर', काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या मात्सर्यादि वासनाओं का संवलितरूप है एवं 'मन' में अवस्थित हो, जीव के साथ चौरासी लाख योनियों से होकर गुजरता हुआ, किंवा यात्रा करता हुआ आया है और समष्टि रूप में यही शरीर (कारण शरीर) जीवों की प्रकृति बन गया है। इतना ही नहीं; अपितु इसी शरीर के अधिष्ठान भूत 'मन' में ही जीवों के जन्म–जन्मान्तरों के सुख–दुःखात्मक, ज्ञानाज्ञानात्मक एवं शुभाशुभ कर्मों के समस्त संस्कार विद्यमान रहते हैं और जो प्राणियों के अगले नये शरीरों में, अपने–अपने नियत उपादानों को पाकर, यथावसर व्यक्त होते हैं। जिस प्रकार से वर्तमान में प्रचलित मोबाइल–सिम एवं सूक्ष्म चिप में असंख्य नम्बर व असंख्य फंशनिंग अव्यक्तावस्था में विद्यमान रहती हैं, ठीक उसी प्रकार से पूर्वविहित सारे भाव एवं सारी की सारी वासनाएँ मन में ही विद्यमान रहते हैं। यहाँ तक मैंने जीव के प्रथम–'कारण शरीर' पर प्रकाश डालने का प्रयास किया, जो कि नितान्त भावात्मक घटक है।

जीवों का दूसरा–'सूक्ष्म शरीर' (लिंग शरीर) है, जो कि सांख्य दर्शन के अनुसार–18 तत्वों–महत्तत्व, अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियों, (कर्ण, त्वक्, चक्षु, रसना एवं घ्राण) पाँच कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, पायु एवं उपस्थ) एक 'मन' तथा पंचतन्मात्राओं– (शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध) से निर्मित है।[1] ध्येय है कि ये तन्मात्राएँ क्रमशः ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। अहंकार के सात्विक अंश से ग्यारह इन्द्रियाँ तथा तामसी अंश से पंचतन्मात्राएँ व्यक्त हुई हैं एवं अहंकार का राजसी अंश अशक्त सात्विक एवं तामसी अंशों में शक्ति का आधान करता है। जीवों के सूक्ष्म शरीर निर्माण के विषय में वेदान्त दर्शन सत्रह तत्वों को ही स्वीकार करता है–'सूक्ष्मशरीराणिसप्तदशावयवानि'[2] अर्थात् पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पंचप्राण (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) मन तथा बुद्धि। वेदान्तदर्शन के अनुसार ज्ञानेन्द्रियाँ–आकाशादि सूक्ष्म भूतों के सात्विमक अंशों से क्रमानुसार, अलग–अलग उत्पन्न होती हैं; पंचकर्मेन्द्रियाँ आकाशादि के राजसी अंशों से क्रमशः अलग–अलग उत्पन्न हुई हैं' प्राणादि पंचवायु, आकाशादिगत रजोगुणमिश्रित अंशों से उत्पन्न हैं तथा 'चित्त' एवं 'अहंकार', जो कि 'मन' एवं 'बुद्धि' में ही अन्तर्भूत हैं,–इन चारों (मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार) की उत्पत्ति आकाशादि में स्थित सात्विक अंशों के सम्मिश्रित अंशों से होती है। इन्हीं चारों के प्रकाशित होने के कारण इन्हें सात्विक

***वरिष्ठ प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, बी0एन0के0बी0पी0जी0 कॉलेज अकबरपुर, अम्बेडकरनगर (उ0प्र0)**

अंशों से उद्भूत माना गया है। ध्येय है कि अन्तःकरण की 'निश्चयात्मिका वृत्ति' को 'बुद्धि', अन्तःकरण की 'संशयात्मिका वृत्ति' को 'मन' अन्तःकरण की 'अभिमानात्मिका वृत्ति–को ही 'अहंकार' एवं अन्तःकरण की 'स्मरणात्मिका वृत्ति' ही 'चित्त' है।

जीवों का सूक्ष्म शरीर सृष्टि के आरम्भ से लेकर सृष्टि के प्रलयकाल तक बना रहता है। प्रलयकाल में जब 'पुरूष' और 'प्रकृति–ये दोनों नित्य तत्व रहते हैं, तब यह सूक्ष्मशरीर अपने कारण, मूलप्रकृति में विलीन हो जाता है। इस शरीर की सर्वत्र गति होती है। आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी आदि सभी स्थानों, यहाँ तक कि शिलाखण्डों में से होकर भी गुजर सकता है। इसका आश्रय, माता–पिता के रज और वीर्य से निर्मित स्थूलशरीर होता है। इसके माध्यम से ही यह सूक्ष्मशरीर सारे भोगों को भोगता है और मरने के बाद यह सूक्ष्मशरीर, स्थूल शरीर का परित्याग करके दूसरे नये स्थूलशरीरों को धारण करता रहता है।

अवधेय है कि सृष्टि के प्रारम्भ में 'प्रकृति' प्रत्येक पुरूष के लिए एक–एक सूक्ष्म शरीर का निर्माण कर देती है। इसी सूक्ष्मशरीर के सहारे पुरूष का अनेक प्रकार के लोकों में भ्रमण सम्भव होता है। विवेकज्ञान होने पर इसकी स्थिति भुने हुए बीज के समान होती है, जो नये पौधे रूपी स्थूल शरीर को फिर उत्पन्न करने में अक्षम हो जाता है। पुनश्चावधेय है कि मृत्यु के बाद पुरूष (आत्म) सूक्ष्मशरीर के साथ ही दूसरे स्थूलशरीरों को धारण करता है। प्रत्येक जन्म में किये गये कर्मों के संस्कार सूक्ष्म शरीर के साथ ही रहते हैं, जिन्हें व्यक्ति अगले जन्मों में, किसी भी प्राणी के शरीर को धारण करके भोगता है और यही चक्र चलता रहता है।[3]

जीवों का तीसरा शरीर है–स्थूलशरीर। यह शरीर–गगन, पवन, अनल, सलिल एवं अवनि, इन पंचमहाभूतों के सम्मिश्रण से निर्मित है। प्रत्यक्षतः यह माता–पिता के रज एवं वीर्य से अपना रूप–आकर–प्रकार प्राप्त करता है। इसमें 6 कोश होते हैं; इसीलिए इसे षाट्कौशिक भी कहते हैं। इन छः कोशों में –त्वचा, रक्त एवं मांस–ये तीनों माता के रज द्वारा तथा स्नायु, हड्डी और मज्जा–ये तीनों पिता के वीर्य द्वारा निर्मित होते हैं। यह शरीर चक्षु इन्द्रिय का, सम्यक्तया विषय बनता है। ध्येय है कि जिस प्रकार से अत्यन्त सूक्ष्म वट–बीज में विशाल वटवृक्ष का रूप–आकार–प्रकार छिपा रहता है; ठीक उसी प्रकार से माता–पिता के रज–वीर्य में स्थूलशरीर छिपा (अव्यक्त) रहता है और उसी से व्यक्त हो अपना स्वरूप धारण करता है।[4] ध्यातव्य है कि जीवों के प्रथम एवं द्वितीय अर्थात् कारण एवं सूक्ष्मशरीर तो सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलयकाल तक बने रहते हैं, अतएव नित्य हैं; पर तीसरा स्थूल शरीर अनित्य एवं जड़ात्मक है। इसी में उत्पत्ति, विकास एवं विनाश की प्रक्रिया चलती रहती है।

जैसे शरीर पर बनियान, कुर्ता, जैकेट, कोट और ओवरकोट एक के ऊपर एक पहन लेते हैं, वेसे ही आत्मा भी पाँच आवरण धारण किये हुए है; जिन्हें (1) अन्नमयकोश (2) प्राणमयकोश (3) मनोमयकोश (4) विज्ञानमयकोश तथा (5)

आनन्दमयकोश कहते हैं। कोशात्मक इन आवरणों को हटाते हुए जीवात्मा का, परमात्मसाक्षात्कार करना ही योग साधना का परम् लक्ष्य है। जप के बाद अगली भूमिका में प्रत्येक साधक को प्रवेश करना पड़ता है, तब उसके लिए यह पंचकोशी साधना आवश्यक हो जाती हैं। यह एक उच्चस्तरीय योग साधना है, जो सर्वग्राही है। ईश्वर प्रदत्त बहुमूल्य विभूतियाँ, आत्मसत्ता के मर्मस्थलों में छिपी हुई हैं, जिन्हें पंचकोशी जागरण की साधना से साधक प्राप्त कर लेते हैं।

अन्नमयकोश का अर्थ है–इन्द्रिय चेतना, प्राणमयकोश–अर्थात् जीवनीशक्ति, मनोमयकोश अर्थात् बुद्धि–विचार, विज्ञानमयकोश अर्थात् भावप्रवाह, आनन्दमयकोश अर्थात् आत्मबोध, आत्मस्वरूप में स्थिति–ये पाँच चेतना–स्तर हैं।[5]

'शरीर–विज्ञान–विमर्श के सन्दर्भ में पुनश्चावध्येय है कि सूक्ष्मशरीर अनेक प्रकार की योनियों में अलग–अलग प्रकार के शरीरों की प्राप्ति का एक मात्र कारण, जीव–कृत शुभाशुभ कर्म हैं। सूक्ष्मशरीर जिन भावों से अधिवासित होकर लोक–लोकान्तर की नाना योनियों में, प्रलयकाल पर्यन्त संसरण करता है–वे भाव, मुख्यतः दो प्रकार के हैं– (1) सांसिद्धिक (जन्मजात) (2) असांसिद्धिक (बाह्य उपाय साध्य)। यहाँ 'भाव, से अभिप्राय–धर्म–अधर्म, ज्ञान–अज्ञान, राग–विराग तथा ऐश्वर्य–अनैश्वर्य, बुद्धि के आठ धर्मों से है; क्योंकि सूक्ष्मशरीर में बुद्धि एक मुख्य घटक के रूप में रहती है; इसलिए बुद्धि के उक्त धर्मों का सूक्ष्मशरीर में रहना सहज है, स्वाभाविक है। अस्तु, 18 तत्वों से निर्मित यह सूक्ष्मशरीर उक्त 8 भावों से ठीक वेसे ही अधिवासित रहता है' जैसे–यदि चम्पा या केवड़े के पुष्प को स्वच्छ वस्त्र में लपेट कर रख दें, तो वह वस्त्र भी सुवासित हो जाता है। यही सूक्ष्मशरीर का धर्म–अधर्म आदि भावों से अधिवासित होना है। धर्म, ज्ञान, विराग एवं ऐश्वर्य–ये चारों बुद्धि के सात्विक एवं अधर्म, अज्ञान, राग एवं अनैश्वर्य–ये चारों बुद्धि के तामसी भाव हैं। माता–पिता के 'रज' एवं वीर्य के सम्मिश्रण से माँ के गर्भ में कलल, बुद्बुद, मांस, पेशी, करण्ड, अंग, प्रत्यंग एवं व्यूह की समष्टि से ही जीव का स्थूलशरीर निर्मित होता है तथा मां के गर्भाशय से बाहर आकर यही शरीर–बाल्य, कौमार्य, यौवन तथा बार्धक्य अवस्थाओं को प्राप्त होता है। सूच्य है कि रज व वीर्य के मिश्रण को 'कलल' कहा जाता है। 'कलल' का वर्तुलाकार होना ही 'बुद्बुद' है; 'बुद्बुद' का धनीभाव ही 'मांस' है; मांस का कोश 'पेशी', पेशी का कठोर हो जाना 'करण्ड' कहलाता है। शिर, पैर, हाथ आदि अंग तथा अंगुली आदि को प्रत्यंग कहते हैं।[7]

मधुर, तिक्त, कशाय, कटु, अम्ल और लवण–इन छः रसों का आस्वादन करने से ही यह देह छः आश्रय वाला कहा गया है।[8] षड्रस युक्त भोज्यपदार्थों के रसों से ही रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से स्नायु, स्नायु से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से वीर्य (शुक्र) उत्पन्न होते हैं। ये सात धातुएँ ही भौतिक शरीर का निर्माण करती हैं। वीर्य एवं रज से ही गर्भ बनता है।[9] उचित प्रकार से गर्भाधान होने पर ही वीर्य एवं रज के योग से एक रात्रि में 'कलल' और सात रात्रियों में बुद्बुद

बनता है। एक पखवारे में पिण्ड बनता है, जो एक मास में कुछ कठोर हो जाता है; दो मास में सिर और तीन माह में पैर बनते हैं; चौथे मास में टखने, पैर और कमर बनते हैं। पाँचवें माह में पीठ, रीढ़ और छठें माह में मुख, नाक, कान, आँख आदि बनते हैं। सातवें मास में जीवयुक्त होकर आठवें माह में परिपूर्ण होता है।[10]

शुक्र की अधिकता से पुत्र होता है और रज की अधिकता से पुत्री उत्पन होती है। शुक्र–रज के सममात्रा में होने पर नपुंसक सन्तान उत्पन्न होती है। व्याकुलता के समय पत्नी से संयोग करने पर सन्तान–बौनी, अन्धी, कुबड़ी उत्पन्न होती है। जब वायु के सामर्थ्य से शुक्र दो भागों में वितरित हो जाता है, तब जोड़ा सन्तान उत्पन्न होता है। पंचात्मक शरीर जब स्वस्थ रहता है, तब पंचज्ञानेन्द्रिय वाली बुद्धि उत्पन्न होती है। उससे रस, गन्धादि का ज्ञान प्राप्त होता है।[11] फिर माता द्वारा सेवन किया हुआ अन्न और जल, नाड़ी सूत्रों के द्वारा गर्भस्थ शिशु के शरीर में पहुँचकर उसकी तृप्ति करते हैं; और फिर नवें मास में वह ज्ञानेन्द्रिय आदि से युक्त होकर पूर्ण हो जाता है। उस समय वह पूर्वजन्म का स्मरण करता है, तब उसके शुभ–अशुभ कर्म उसके समक्ष प्रकट हो जाते हैं–'अथ मात्राशित–पीतनाड़ीसूत्रगतेन प्राणा आप्यायन्ते। अथ नवमे मासि सर्वलक्षण–ज्ञानकरणसम्पूर्णो भवति। पूर्वजाति स्मरति। शुभाशुभं च कर्म विदन्ति।।[12]

उस समय गर्भ में जीव सोचता है कि मैंने अपने पूर्व के हजारों जन्मों को देखा और उन जन्मों में नाना भोगों का भोग किया तथा अनेकानेक योनियों से गुजरता हुआ माँ के स्तनों का पान करता रहा। अनेक बार जन्मा और मृत्यु को प्राप्त हुआ। उन जन्मों में अपने परिवार के हित में जो–जो शुभ–अशुभ कर्म किये, उनको सोच–सोच कर आज मैं अकेला ही जल रहा हूँ। उन भोगों को भोगने वाले तो न मालूम कहाँ गये; परन्तु मैं यहाँ दुःखार्णव में पड़ा हूँ, इससे निकल पाने का मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। जब मैं इस गर्भ से निकलकर बाहर जाऊँगा, तब बुरे कर्मों के कष्ट नाशक और मुक्तिरूप फल देने वाले महेश्वर की शरण ग्रहण करूँगा। यदि मैं कर्मयोनि से निकल सका, तो ब्रह्म–चिन्तन में मन लगाऊँगा, इस प्रकार से विचार करता हुआ वह जीव बड़े कष्ट से जन्म पाता है, परन्तु जन्म लेने पर वह माया का स्पर्श होते ही पूर्व जन्म एवं मृत्यु के कष्टों को भूल जाता है–

'पूर्वयोनि–सहस्त्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया,
आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः।
जातस्यैव मृतस्यैव जन्म चैव पुनः पुनः, यन्मया परिजनस्यार्थे
कृतं..... न स्मरति जन्ममरणानि न च कर्म शुभाशुभम्।।[13]

'त्रीणि स्थानानि भवन्ति मुखे आहवनीय.....पैप्पलाद मोक्षशास्त्रं पैप्पलादं मोक्षशास्त्रमिति।।'[14]

सूक्ष्म मानव–शरीर में अवस्थित पंचकोशों की विवेचना, शास्त्रकारों ने स्थान–स्थान पर की हैं, और उन कोशों की गरिमा एवं उपयोगिता से सर्वसाधारण

को परिचित कराने का प्रयास भी किया है। ऋग्वेद में इन पाँचों कोशों को, पंचऋषियों की संज्ञा दी गयी है और कहा गया है कि वे जीवन्त स्थिति में ही सारे जीवनरूपी उद्यान को सुरम्य एवं पवित्र बना सकते हैं–'अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्'।[15]

इसी शरीर में पंचप्राण, अनन्तशक्तियाँ, महासर्प, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, विद्याधर, अप्सरायें, अनेकतीर्थ, वर्ण, गुह्यक निवास करते हैं..... गन्धर्वाः किन्नरारक्षाविद्याधराप्सरादयः। अनेकतीर्थवर्णाश्च गुह्यकाश्च वसन्ति हि।। प्रकृतिः पुरुषो देहे ब्रह्माविष्णुशिवस्तथा। अनन्तसिद्यो बुध्या प्रकाशो वर्तते हृदि।। ब्रह्माडेये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे।। ब्रह्माडे यानि वै सन्ति तानि सन्ति कलेवरे। ते सर्वे प्राणाः संलग्नाः प्राणातीतो निरंजनः।।[16]

प्रकृति, पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अनन्तसिद्धियाँ, अनन्त ज्ञान, अनन्त प्रकाश सब इसी पंचात्मक शरीर में गुप्तावस्था में विद्यमान है और प्रकाश प्रकाशित होते हैं। वाह्य ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी है, वह सब इसी शरीर पिण्ड में, सूक्ष्म रूप में विद्यमान है। पूर्वविहित पंचकोशोंमें ही शिवशक्ति की प्रचण्डता विद्यमान है, जिसे अज्ञानी जन देख–समझ नहीं पाते– सूक्ष्मेण दिव्यलोकेन स्थूललोकस्य देहिनः। सम्बन्धकारको ज्ञेयः कोशः प्राणमयश्चरः।। स्थूल देहधारियों का सम्बन्ध सूक्ष्म दिव्य लोक के साथ जोड़ने का कार्य प्राणमय कोश करता है।

देह में जो ''मैं'' रूप 'अहन्ता' बनकर विद्यमान है; जो वस्तुओं और प्राणियों में 'ममता' रखता है; जो नाना कामनाएँ करता है और उनकी पूर्ति के लिए सर्वत्र भटकता है, वही मन है, मनोमय कोश है, जो सुषुप्तिकाल में विलीन हो जाता है, जो समस्त शरीरों में संव्याप्त है, उस चिदाभास युक्त विवेक बुद्धि को ही विज्ञानमय कोश कहते हैं।[17]

जो कर्मविषयिणी बुद्धि और वेदशास्त्र से निश्चित की गई है, वह ज्ञानेन्द्रियों सहित विज्ञानमय कोश में स्थिर रहती है। शरीर के भीतर एक अन्तर्मुखी वृत्ति है, जो ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को अपने भीतर भासमान देखती है, वही वृत्ति पुण्य भोगती है; शान्ति प्राप्त करती है और योगनिद्रा में लीन हो जाती है, उसी का नाम 'आनन्दमय कोश' है।[18]

ध्येय है कि अन्नमय कोश के दो भाग किये जा सकते हैं–(i) स्थूल और (ii) सूक्ष्म। दोनो के मिलने से ही अन्नमयकोश बनता है। शरीर–शास्त्र स्थूल है और अध्यात्मशास्त्र सूक्ष्म। साधना के क्षेत्र में स्थूल का उपयोग परिशोधन एवं सन्तुलन मात्र के लिए होता है; जैसे–आसन, प्राणायाम्, नेति, धोति, वस्ति, बज्रोली, कपालभाति, ब्रह्मचर्य, व्रत, उपवास, स्नानादि क्रियाएँ अध्यात्म की परिधि में गिनी जाने पर भी स्थूलशरीर के परिशोधन और सन्तुलन की आवश्यकता ही पूरी कर पाती है। इन क्रियाओं के पीछे जो दर्शन, प्रकाश एवं संकेत है, सूक्ष्म अध्यात्म के साथ उतना भाग ही जुड़ता है। अध्यात्मशास्त्र की उच्चभूमियां वे हैं, जो 'शरीर'

की अपेक्षा 'चेतना' को अधिक प्रभावित करती हैं। सूच्य है कि पंचकोशों की चर्चा अध्यात्मशास्त्र की परिधि में ही आती है; शरीरशास्त्र की परिधि में कम।

अस्तु, अन्नमयकोश को काय–कलेवर के साथ जोड़ा तो जा सकता है; पर शरीर ही अन्नमयकोश है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, अन्नमयकोश का स्थूल पक्ष शरीर भी है, ऐसा मानना चाहिए व इसी कोश के सूक्ष्म भाग को जागृत, परिष्कृत, प्रखर एवं परिपुष्ट करने की व्यवस्था है।[19]

शारीरिक स्फूर्ति एवं मानसिक उत्साह की विशेषता इसी प्राणविद्युत के स्तर और अनुपात पर निर्भर करती है। इनके बढ़ने से मनुष्य उत्तेजित और चंचल दिखलाई देता है और घटने पर आत्महीनता, संकोच, उदासीनता, भीरूता, आशंका आदि न्यूनताएँ प्रकट होने लगती हैं। चेहरे पर चमक, आँखों में तेज, मन में उमंग, स्वभागव में साहस, प्रवृत्तियों में पराक्रम–इसी प्राण–विद्युत–प्रवाह का उचित मात्रा में प्रवाहित होना सिद्ध करता है। अध्यात्म विज्ञान में इसी तत्त्व को 'तेजस्' कहा जाता है। 'तेजस्' और कुछ नही; वरन् प्राणशक्ति की उपयुक्त मात्रा का परिणाम भर है। शरीर के इर्द–गिर्द फैला हुआ विद्युत प्रकाश तेजोबलय कहलाता है और इसी की स्थिति तेजपुंज के रूप में चेहरे के इर्द–गिर्द रहती है, जो देवी–देवताओं एवं महापुरुषों में देखी जाती है।

पुनश्चावध्येय है कि मनोमय कोश में अकेला 'मन' ही नहीं; अपितु मन, बुद्धि और चित्त–तीनों का संगम है। अन्तःकरण में इनके अतिरिक्त एक चौथा घटक–'अहंकार' भी है। यह विज्ञानमय कोश का भाग गिना गया है।

यहाँ अहंकार का अर्थ– 'घमण्ड' नहीं, 'स्वानुभूति' है, जिसे अंगेजी में 'इगो' कहते हैं। मन कल्पना करता है, बुद्धि विवेचना करती है और निर्णय पर पहुँचती है, चित्त में 'अभ्यास' के आधार पर वे आदतें बनती हैं, जिन्हें 'संस्कार' कहा जाता है। इन तीनों का मिला हुआ स्वरूप ही मनोमयकोश है। सूच्य है कि मन एवं ज्ञानेन्द्रियों का विकाररूप यही कोश आत्मस्वरूप को आच्छादित करके संशयरहित 'आत्मा' को–'संशययुक्त', मोह–शोकरहित 'आत्मा' को–'मोहशोकयुक्त' और दर्शन रहित 'आत्मा' को दर्शनादि का कर्त्तारूप प्रकट करता है। इसी मनोमयकोश में ही इच्छाशक्ति विद्यमान रहती है। यही कोश पूरी विचारसत्ता का क्षेत्र है। इसी कोश में चेतन, अचेतन एवं उच्च चेतन की तीनों ही पर्तों का सन्निवेश है।

प्रतिप्रसव (अर्थात् चित्त को बनाने वाले गुणों की अपने कारण में लीन होने की अवस्था) में–चित्त में निरोध परिणाम अर्थात् चित्त के अवशिष्ट संस्कार भी निवृत्त हो जाते हैं; चित्त को बनाने वाले गुण–सत्त्व, रजस्, तमस् पुरूष (आत्मा) के भोग एवं मोक्ष का प्रयोजन पूरा करके अपने कारण (मूल प्रकृति) में लीन हो जाते हैं और पुरूष विशुद्ध कैवल्य–परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है;[22] और जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाश से, रात्रि के अन्धकार को दिन में परिवर्तित होते देखा जाता है; ठीक उसी प्रकार से आत्मानन्द के प्रकाश से प्रकाशमान् साधक अपने युग के

अज्ञानरूपी अन्धकार को निगल जाता है तथा अपने कुल, वंश, क्षेत्र व राष्ट्र के इतिहास को धन्य बनाता है।

अस्तु, मैंने 'शरीर–विज्ञान–विमर्श' शीर्षक की परिधि में अपेक्षित तथ्यों, कथ्यों, भावों–विभावों व सिद्धान्तों पर, यथामति तथा आर्षचिन्तनानुभूत–सरणि का सहारा लेते हुए प्रकाश डालने का प्रयास किया; यूँ तो विवेचन की प्रौढ़ि व विस्तार की सीमा नहीं है।

सूक्ष्म मानव–शरीर में अवस्थित पंचकोशों की विवेचना, शास्त्रकारों ने स्थान–स्थान पर की है और उन कोशों की गरिमा एवं उपयोगिता से सर्वसाधारण को परिचित कराने का प्रयास भी किया है। ऋग्वेद में इन पाँचों कोशों को, पंचऋषियों की संज्ञा दी गयी है और कहा गया है कि वे जीवन्त स्थिति में ही सारे जीवनरूपी उद्यान को सुरम्य एवं पवित्र बना सकते हैं– 'अग्निर्ऋषिः पवमानः पांचजन्यः पुरोहितः। तमीमहे महागयम्'।

अर्थात् यह अग्नि ऋषि है; पवित्र करने वाली है; पंचकोशों की मार्गदर्शक है; (अतएव) इस महाप्राण की, हम शरण में जाते हैं। देवताओं की दिव्य शक्तियों की उपासना, आराधना करके अभीष्ठ वर्दान प्राप्त करने की आकांक्षा तभी पूरी हो पाती है, जब अन्तरंग में स्थित दिव्य शक्तियों, वृत्तियों और प्रवृत्तियों को परिष्कृत करने की साधना की जाय।

इसी शरीर में पंचप्राण, अनन्तशक्तियाँ, महासर्प, गन्धर्व, किन्नर, राक्षस, विद्याधर, अप्सरायें, अनेकतीर्थ, वर्ण, गुह्यक निवास करते हैं..... गन्धर्वाः किन्नरारक्षाविद्याधराप्सरादयः। अनेकतीर्थवर्णाश्च गुह्यकाश्च वसन्ति हि।। प्रकृतिः पुरुषो देहे ब्रह्माविष्णुशिवस्तथा। अनन्तसिद्यो बुध्या प्रकाशो वर्तते हृदि।। ब्रह्माडेये गुणाः सन्ति ते तिष्ठन्ति कलेवरे।। ब्रह्माडे यानि वै सन्ति तानि सन्ति कलेवरे। ते सर्वे प्राणाः संलग्नाः प्राणातीतो निरंजनः।।

देह में जो ''मैं'' रूप 'अहन्ता' बनकर विद्यमान है; जो वस्तुओं और प्राणियों में 'ममता' रखता है; जो नाना कामनाएँ करता है और उनकी पूर्ति के लिए सर्वत्र भटकता है, वही मन है, मनोमय कोश है, जो सुषुप्तिकाल में विलीन हो जाता है, जो समस्त शरीरों में संव्याप्त है, उस चिदाभास युक्त विवेक बुद्धि को ही विज्ञानमय कोश कहते हैं।

जो कर्मविषयिणी बुद्धि और वेदशास्त्र से निश्चित की गई है, वह ज्ञानेन्द्रियों सहित विज्ञानमय कोश में स्थिर रहती है। शरीर के भीतर एक अन्तर्मुखी वृत्ति है, जो ब्रह्म के प्रतिबिम्ब को अपने भीतर भासमान देखती है, वही वृत्ति पुण्य भोगती है; शान्ति प्राप्त करती है और योगनिद्रा में लीन हो जाती है, उसी का नाम 'आनन्दमय कोश' है।

अस्तु, अन्नमयकोश को काय–कलेवर के साथ जोड़ा तो जा सकता है; पर शरीर ही अन्नमयकोश है, ऐसा नहीं कहा जा सकता, अन्नमयकोश का स्थूल पक्ष शरीर भी है, ऐसा मानना चाहिए व इसी कोश के सूक्ष्म भाग को जागृत, परिष्कृत, प्रखर एवं परिपुष्ट करने की व्यवस्था है।

प्राणमयकोश सूक्ष्म शरीर का वह भाग है, जिसे विद्युत भण्डारण कह सकते हैं। जैसे–मशीनों के चलने के लिए कोयला, भाप, तेल, बिजली आदि से

उत्पन्न ऊर्जा काम करती है, ठीक उसी प्रकार से मानव या पशुपक्षियों के, अरबों तक की संख्या में पहुंचने वाले अवयवों (कलपुर्जों) से निर्मित शरीर भी विशिष्ट प्रकार की मशीन है, जो मानवादि जीवों द्वारा खाये गये भोज्य पदार्थों से उत्पन्न ऊर्जा द्वारा संचालित होता है, जिसे प्राणि–विद्युत कहते हैं एवं अध्यात्म विज्ञान में इसी को ही 'प्राण' कहते हैं। इसी सामर्थ्य के सहारे काया के समस्त अवयव अपना–अपना कार्य करते रहते हैं।

प्रतिप्रसव (अर्थात् चित्त को बनाने वाले गुणो की अपने कारण में लीन होने की अवस्था) में–चित्त में निरोध परिणाम अर्थात् चित्त के अवशिष्ट संस्कार भी निवृत्त हो जाते है; चित्त को बनाने वाले गुण–सत्त्व, रजस्, तमस् पुरूष (आत्मा) के भोग एवं मोक्ष का प्रयोजन पूरा करके अपने कारण (मूल प्रकृति) में लीन हो जाते हैं और पुरूष विशुद्ध कैवल्य–परमात्मस्वरूप में अवस्थित हो जाता है;22 और जिस प्रकार से सूर्य के प्रकाश से, रात्रि के अन्धर को दिन में परिवर्तित होते देखा जाता है; ठीक उसी प्रकार से आत्मानन्द के प्रकाश से प्रकाशमान् साधक अपने युग के अज्ञानरूपी अन्धकार को निगल जाता है तथा अपने कुल, वंश, क्षेत्र व राष्ट्र के इतिहास को धन्य बनाता है।

अस्तु, मैंने 'शरीर–विज्ञान–विमर्श' शीर्षक की परिधि में अपेक्षित तथ्यों, कथ्यों, भावों–विभावों व सिद्धान्तों पर, यथामति तथा आर्षचिन्तनानुभूत–सरणि का सहारा लेते हुए प्रकाश डालने का प्रयास किया; यूँ तो विवेचन की प्रौढ़ि व विस्तार की सीमा नहीं है।

सन्दर्भ–सूची

1 सांख्यकारिका सं0–40
2. वेदान्तसार, पीयूष प्रकाशन 133,, नई कालोनी अलोपीवाग, इलाहाबाद, पृष्ठ 101
3. सांख्यकारिका, पृष्ठ सं0–113–114
4. वही पृष्ठ सं0– 114–115
5. पं0 श्रीराम शार्मा आचार्य, वांङमय 13, पृष्ठ 1.12
6. सांख्यकारिका, सं0– 40, पृष्ठ 116
7. वही सांख्यकारिका, पृष्ठ 117
8. गर्भोपनिषद्, संस्कृति संस्थान वरेली द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ 321
9. वही पृष्ठ 322 10. वही पृष्ठ 322
11. वही पृष्ठ 323
12. गर्भोपनिषद, पृष्ठ 324, 13. वही पृष्ठ 325
14. ऋग्वेद् 9/66/20 15. महायोग विज्ञान
16. पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, वांङमय पृष्ठ 2.8/2.9
17. वही पृष्ठ 2.10 18. वही पृष्ठ 9.18
19. वही पृष्ठ 9.21